से या हिंसा रोकने वाले माने जाने वाले उपकरणों की पंचार में पड़ने से ही हिंसा नहीं रुक सकती। यही नहीं बल्कि मन वचसा कायेन हिंसा का केवल शाब्दिक 'पच्चक्खाण' क से भी हिंसा नहीं रोकी जा सकती। हिंसा तो तभी रुक सक है जब मनुष्य अपने संकल्प को शुद्ध करे, अपनी वाणी को पवित्र रखे, अपने शरीर को संयम में रखे और अपनी आजीविका पवित्रता पूर्वक चलावे।

इस प्रकार अपनी, अपने समाज की और देश की मर्याद समझने से ही आन्तरिक और बाह्य—दोनों प्रकार की हिंसा रु सकती है।

इसीलिए ज्ञानी पुरुषों ने आठ प्रवचन माताएँ बताई हैं औ मनोनिग्रह, इन्द्रियनिग्रह, परिग्रह संकोच, इन सब प्रवृत्तियों को भी आचरने की खास प्रेरणा की है।

भगवान् महावीर ने निम्नलिखित एक ही गाथा में अहिंसा के पालन का राजमार्ग बतलाया है। वह यह है:—

जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सये।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ ॥दश. अ. ४ था.

अर्थात्—यतना पूर्वक और संयम पूर्वक—चलना, बैठना, सोना, खाना, बोलना—आदि क्रियाएँ करने से पाप-कर्मों का बंध नहीं होता।

इस गाथा में विवेक को अहिंसा-पालन के लिए अमोघ साधन बतलाया गया है। यदि इस विवेक को भुला दिया जाय या उसकी उपेक्षा की जाय तो स्वप्न में भी अहिंसा का पालन संभव नहीं है। विवेकहीन निवृत्ति अहिंसा के बदले हिंसा की पोषक होती है और हो रही है।

जिन लोगों ने 'तीन करण तीन योग से' हिंसा का पच्चक्खाण

लिया है, उनकी कुछ प्रवृत्तियों के उदाहरणों से यह विषय स्पष्ट हो जायगा:—

"एक बार मैं मारवाड़ के एक गाँव में था। वहाँ एक मुनि वनस्पतिकायजी लेने आये। वनस्पतिकायजी की शीशी पेटी में थी। बाहर निकाली तो मुनि जी ने ग्रहण न किया और बाहर चले गये। समझदार श्रावक ने शीशी बाहर ही रहने दी। मुनिजी फिर लौटे पर पुड़िया बाँधने के लिए कागज माँगा तो वे फिर चले गये। श्रावक ने पुड़िया बाँध कर वनस्पतिकायजी तैयार रख छोड़ी। तीसरी बार वे आये पुड़िया में रखी हुई वनस्पतिकायजी लेकर चलते बने। मुनिजी के बार-बार चले जाने का कारण यह था कि उनकी दृष्टि में उनके लिए वायुकाय आदि की हिंसा हुई थी। मुझे लगा कि जो मुनि वायुकाय पर इतना ध्यान रखते हैं उन्हें वनस्पतिकायजी से क्या प्रयोजन?

* * * *

"सिवन में एक बड़ा तालाब है। गर्मी के दिनों में उसमें बहुत कम पानी रहता है। मुश्किल से एड़ियों बराबर रहता होगा। पशु उसमें पानी पीते हैं, ऊँट उसमें लीद और पेशाब करते हैं। पानी में से ऐसी बदबू निकलती है मानो मोरी का पानी हो। फिर भी गाँव के लोग वही पानी पीते हैं और मुनिराज तो उसे और भी गंदा करके पीते हैं। मैंने मुनिजी से एक बार कहा-आप लोगों को समझाइए कि ऐसा अशुद्ध पानी पीने से क्या हानियाँ होती हैं। मुनि ने कहा—यह हमारा धर्म नहीं है।

* * * *

"मुनि जिस स्थान में रहते हैं उसका दरवाजा या खिड़की बन्द नहीं करते क्योंकि बन्द करने से उनके मन्तव्यानुसार हिंसा होती है। नतीजा यह होता है कि मकान में कुत्ते मलोत्सर्ग कर जाते हैं या इधर-उधर घूमते हैं। इसे रोकने के लिये गृहस्थ पेतव

भंग घोटकर उन्होंने उसे गर्म किया और पी गये। गर्म पानी बचा। अपने मित्र से उसे फेंकने को कहा और सूचना की-भाई देख कर जभ डालना। किसी वनस्पति या चींटी पर न गिर जाय।' इसके बाद यह भी कहा—'*भगवान रो भीणो धरम है।*'

'स्थानक में दया पालो' और धर्म वृद्धि' की आवाज सुनाई पड़ती है। सुनाने वाले प्रायः हिंसक कपड़ों से सज्ज होते हैं और अन्य उपकरण भी उनके हिंसा के पोषक ही होते हैं। यही नहीं बल्कि वायुकाय की रक्षा के लिये जिस मुहपत्ति का उपयोग होता है वह भी हिंसक कपड़े की बनी होती है। 'दया पालो' सुनने वाले लोग तो अपने गुरु से सवाये हिंसक कपड़ों से विभूषित होते हैं और वे कपड़े भी अमर्याद। स्त्रियों के कपड़े और गहने शील की मर्यादा का नाश करने वाले। ऐसी हालत में 'दया पालो' 'दया पालो' की आवाज हमेशा सिर्फ सुनने भर को है।

* * * *

"एक मुनि के पास श्रावक आया। मैंने श्रावक का धन्धा पूछा। उसने खेती का धन्धा बताया। तब मैंने कहा—आप अपने खेत में पैदा होने वाले कपास के कपड़े क्यों नहीं पहनते? श्रावक ने महाराज की ओर अंगुली उठाकर कहा—महाराज ऐसे कपड़े कहाँ पहनते हैं? मैं चुप रहा।

* * * *

"साधु अक्सर कहते हैं—हमें तो जो 'सूझता' मिलता है वह ले लेते हैं। इसमें क्या दोष है? हमने हिंसा का पचक्खाण किया है। मैंने कहा—मैं अपने देश से जयपुर आया। रेल में बैठा।

नहीं कहा था कि मेरे लिये रेल या नल चलाओ। तब मेरे लिए ये सब 'सूझते' हैं न? मुनि बोले—तुम्हारे पच्चक्खाण कहाँ है? हमारे तो हिंसा का पच्चक्खाण है।

* * * *

"एक मित्र के यहाँ ऊन का पार्सल आया। मैंने पूछा—ऊन कहाँ से आई? वे बोले—अमृतसर से। ऊन के बंडल पर देखा तो लिखा था—Made in England. ऊन बहुत बारीक थी और रजोहरण तथा पूंजणी आदि धर्मोपकरण बनाने के लिए मंगाई थी। उस समय बारीक ऊन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मैंने पढ़ा था कि ऐसी बारीक ऊन के लिए ताजे जन्मे हुए घेटे काटे जाते हैं। यही नहीं पर गर्भिणी भेड़ों के पेट चीर कर नन्हें २ बच्चों को निकाल कर चीरते हैं और फिर नरम ऊन निकालते हैं। अपने नन्हें बच्चों के बालों की भांति भेड़ों के बच्चों की ऊन भी नरम होती है। मित्र यह समझते थे कि मोटी-खुरदरी ऊन से चींटी आदि जन्तु मर जाते हैं—नरम ऊन से अधिक दया होती है। मित्र की समझ सुनकर हृदय में दुःख हुआ। तत्काल उपाश्रय में आकर व्याख्यान दिया। साधुओं से भी विनय पूर्वक कहा-सुना। साधुओं ने तो कहा—हमें तो इस बात का पता ही नहीं था। हमें जो सूझता मिल जाता है, ले लेते हैं।

* * * *

"साधु स्त्रियों को नियम देते हैं कि तिथियों के दिन तुम ठण्डा पानी न पीना, धोवन पीना, स्नान न करना, रसोई न बनाना। बहुत-सी स्त्रियों को ऐसे नियम लेते और पालते देखा गया है। इसका परिणाम कुटुम्ब-क्लेश के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। यही नियम पालने वाली स्त्रियाँ प्रति वर्ष बालक प्रसव करती हैं, ठिसक कपड़े पहनती हैं और लड़ती झगड़ती हैं।

* * * *

"परिश्रम करने वालों को पूरी मजूरी दिये बिना और उनके स्वास्थ्य के सत्यानाश की परवाह किये बिना ही धावक लोग बड़ी बड़ी मिलें चलाते हैं। अधिक से अधिक ब्याज खाते हैं। अंग्रेजी दवाओं का या नशीली चीजों को उत्तेजन देने वाला व्यापार करते हैं, घर में पूंजी जमा कर दिवाला निकालते हैं, कन्याविक्रय करते हैं, पांच-पांच सन्तान होते हुए और घर में जवान पुत्री विधवा होने पर भी बुढ़ौती में विवाह करते हैं। फिर भी वे धर्म के स्तम्भ गिने जाते हैं, अहिंसा के प्रतिपालक माने जाते हैं।"

• • • •

"पदवी का झगड़ा, संभोग का झगड़ा, अपनी मान्यता का झगड़ा, आदि प्रवृत्तियों में साधुओं को बहुत कम फुर्सत मिलती है। लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम होता कि इन सब रगड़ों-झगड़ों से वे हिंसा का पोषण कर रहे हैं या नहीं।"

• • • •

"पंजाब से एक भाई खास तौर पर बगड़ी में बनने वाले पात्र (पातरा) लेने आये। उनके आने जाने का खर्च तीस रुपया और पात्रों की कीमत पैंतालीस रुपया। इस प्रकार पात्रों की कीमत पचहत्तर रुपये हुई। इन पात्रों का उपयोग अपरिग्रह व्रत के साथ किस प्रकार संगत हो सकता है यह एक विचारणीय प्रश्न है। साधुओं की परिभाषा में चाहे तो वर्तमान में सुन्दर पात्र एक मिट्टी के मिल सकते हैं। फिर भी सिर्फ साधुओं के लिए बनाये जाने वाले इतने मंहगे पात्र काम में लाये जाते हैं।"

• • • •

भगवान् ने कहा है—धातु के पात्र को छूना नहीं चाहिए। यह बात ठीक है, पर भगवान् के इन शब्दों को पकड़ रखने के लिए धातु को भी मात करने वाले मंहगे पात्रों का अपरिग्रही कैसे

का पोषण बना हाला है। क्या धार्मिक चर्चा और तथा धर्म का अभ्यास, इनमें से कोई भी वस्तु सच्ची अहिंसा को उत्पन्न नहीं कर रही है।

हमारी ये तमाम विकृतियाँ इस पुस्तक को पढ़ने से अधिक ख्याल में आनी चाहिए।

महात्मा गांधी की अहिंसा पर यदि भली भांति विचार करके उनके जीवन का अनुकरण किया जाय तो भगवान महावीर द्वारा प्रत्पित अहिंसा समझी जा सकेगी और उनके बताये हुए अहिंसा के राजमार्ग पर कदम बढ़ा सकेंगे।

यहाँ पर अहिंसा की जो विकृतियाँ बताई गई हैं वे सारे संसार में व्याप रही हैं। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी, वैदिक, बौद्ध, शैव, वैष्णव, क्रिश्चियन, इस्लामी, आर्यसमाजी, आदि समस्त सम्प्रदायों के अनुयायियों में यही हालत नज़र आ रही है।

इन विकृतियों को बताने का उद्देश सिर्फ यह है कि हमें अपने दोषों का ख्याल आ जावे और अपने संकल्पों को विशुद्ध बनाकर हम अपने जीवन में अहिंसा को वास्तविक स्थान दे सकें। इन उल्लिखित विकृतियों का किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। लोगों के सम्पर्क में आने पर जो अनुभव हुए हैं, उनके कुछ नमूने मात्र यहाँ लिखे गये हैं।

—बेचरदास जीवराज दोशी

विषयानुक्रमणिका

की हिंसा करते हैं, जब कि हम एक ही गाय या बकरे को खाकर एक ही प्राणी की हिंसा करते हैं। अतएव हममें तुम्हारी अपेक्षा, अधिक दया है।

तब धर्मगुरु ने विवेक के साथ पादरी को उत्तर दिया—तुम जिस पशु को खाते हो उसका शरीर किस प्रकार बना है, इसका विचार करो। उस पशु ने कितना घास खाया होगा? कितना दाना खाया होगा? यह सब खाने-पीने से उसका शरीर बना है। इसके सिवाय उस पशु को जन्म देनेवाले उसके माता-पिता ने अपने शरीर को पोषण करने के लिए कितने जीवों की हिंसा की होगी?

इस प्रकार परम्परा का विचार करने से अनाज की अपेक्षा मांसाहार में करोड़ों गुना नहीं बल्कि अनन्त गुना अधिक पाप है। इस समय उल्लिखित पादरी के समान अपने अनेक धर्मगुरुओं में और समाज में अविवेकमय समझ फैल जाने से मनुष्य धर्म करने जाते हैं मगर अधर्म का आचरण कर बैठते हैं।

(२) मिठाई की अपेक्षा हरी में अधिक पाप माना जाता है। परन्तु मिठाई किस प्रकार बनी है? किसने, किस प्रकार और कब बनाई है? और तुम्हारे खरीदने से वह दूसरी मिठाई किस प्रकार बनाएगा? बनाने वाला कौन है? उसमें जीवों के प्रति कितना दया सम्बन्धी विवेक है? इत्यादि बातों का विचार करने वाला मिठाई में भी विशेष पाप समझ सकता है?

(३) अष्टमी, चतुर्दशी के दिन पुष्प न सूंघने वाला अत्तर को बेधड़क काम में लाता है। पर यदि वह विवेकपूर्वक विचार करेगा, अत्तर की उत्पत्ति पर गौर करेगा, तो वह समझ सकता है कि अत्तर पुष्प की अपेक्षा अधिक पापक्रियाओं से बनता है।

(४) दिया जलाने में ऐरण्डी और घासलेट दोनों का तेल काम में आता है पर घासलेट की उत्पत्ति का विचार करने पर मालूम होगा कि उसमें ऐरण्डी के तेल से अधिक पाप है।

(५) घर में कुवा रखना चाहिए या नल ? इस सम्बन्ध में जो इस बात का विचार करेगा कि नल चलाने के लिए बड़े बड़े यंत्र चलाने पड़ते हैं, उसे कुए की अपेक्षा नल रखने में अधिक पाप प्रतीत होगा।

(६) अपने हाथ से काम करने और नौकर से काम कराने के विषय में भी यही बात है। विवेकी पुरुष अपने हाथ से विवेक-पूर्वक यतना से काम करेगा और बहुत से जीवों की दया पाल सकेगा। अविवेकी नौकर थोड़ा समझेगा और जीवों की हिंसा करेगा। विवेकी के हाथ से वर्ष भर में जितनी हिंसा नहीं हो सकती, अविवेकी नौकर एक घण्टे में उससे अधिक हिंसा कर डालता है। उस पाप का भागीदार वह सेठजी या सेठानीजी हैं जिन्होंने अविवेकी नौकर से काम कराया है।

(७) इस प्रकार प्रत्येक वस्तु का उपयोग करने से पहले उसे ऊपरी नजर से न देखें, बल्कि उसकी आदि से लेकर तैयार हो चुकने तक की तमाम क्रियाओं का और उससे प्राप्त होने वाले हानि-लाभ का विचार करना चाहिए। उस वस्तु से अपने आपको या देश को कितना हानि-लाभ है? वह प्रकृति के नियमानुसार शरीर के लिये आवश्यक है या अनावश्यक? वह जीवन और राष्ट्र के लिए साधक है या बाधक? भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों का; करने वाला, कराने वाला तथा अनुमोदन करने वाला, मन से, वचन से और काय से, आदि आदि विषयों का बारीक

विचार करने से सच्चे धर्मतत्त्व—अहिंसा की प्राप्ति हो सकती है और पाप से बचाव हो सकता है।

किसी क्रिया में या किसी वस्तु के उपयोग करने में जितना ही विवेक रखा जायगा वह उतनी ही धर्ममय बनेगी और विवेक के अभाव में वह उतनी ही अधर्ममय बन जायगी। अतएव सच्चे जिज्ञासु को चाहिए कि वह अपने जीवन को तथा कुटुम्ब को धार्मिक बनाने के लिये अपनी प्रत्येक क्रिया विवेकपूर्वक ही करे इसी में संसार का कल्याण है।

हमारे समाज में आज अल्पारम्भ—महारंभ का जो तुमुल मतयुद्ध-सा प्रारंभ हुआ है, वह शुद्ध जिज्ञासा के साथ उपर्युक्त दृष्टि से वास्तविकता को समझने से शांत हो सकता है। इसी उद्देश को सामने रखकर प्रस्तुत पुस्तिका में उपासकों की सुगमता के लिये कतिपय क्रियाओं का स्पष्टीकरण किया गया है। यह स्पष्टीकरण प्रत्येक विषय के निर्णय करने की कसौटी है। आशा है थोड़े बहुत अंश में यह प्रत्येक पाठक को उपयोगी सिद्ध होगा।

मोतियों का हार।

२

अक्सर मनुष्य अपनी श्रीमंताई या बड़प्पन का प्रदर्शन करने के लिए विविध प्रवृत्तियाँ करते हैं। आभूषण पहनने वाले केवल अपना बड़प्पन प्रगट करने के लिए ही आभूषण पहनते हैं।

जैनों के धर्म-स्थानक में फूलों का हार पहन कर जाने में शर्म समझी जाती है और ऐसा करने में पाप माना जाता है। फूल वनस्पति काय के जीवों का पिंड रूप है, अतएव उसके पाप से सावधानी रखनी भी चाहिये पर यहाँ तो एकेन्द्रिय जीव की रक्षा के लिए पंचेन्द्रिय जीवों का घात किया जाता है।

मोती का हार पहनने वाला अपने को बहुत बड़ा मानता है पर इस झूठे बड़प्पन के मोतियों के लिए कितने मनुष्यों और मच्छों को प्राणों से हाथ धोना पड़ता है, इस बात का उसे विचार ही नहीं आता।

तालाब और नदी में एक डुबकी मारने वाले की सांस भी घुटने लगती है तो समुद्र के पानी में सैकड़ों हाथ की गहराई में गोता लगाना और वहाँ विक्षोभ करने वाली निरपराध मछलियों

को पकड़-पकड़कर टोकरी में भरना, थोड़ी-थोड़ी पकड़ते-पकड़ते टोकरी पूरी भरना, और तब ऊपर आना कितना खतरनाक है ? बीच में यदि कोई हिंसक जानवर मिल गया तो गोताखोर को घसीट ले जाता या निगल जाता है। साधारण छोटे छोटे तालाबों या नदियों में भी मगर मनुष्य को खींच ले जाते हैं और खा जाते हैं तो भयङ्कर समुद्र के हिंसक प्राणी कैसे विकराल होंगे; इस बात की कल्पना करना तक कठिन है।

इस प्रकार दरिद्र मजदूर पापी पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए अथाह समुद्र में गोता लगाते हैं। उनका पुण्य तीव्र हुआ तो समुद्री मगर मच्छ जैसे प्राणियों का शिकार न बन कर वे ऊपर आ जाते हैं और ऊपर आकर छोटी उम्र में ही काल के विकराल गाल में चले जाते हैं।

इसके अतिरिक्त समुद्र के किनारे लाखों मछलियों का ढेर किया जाता है। बेचारी मछलियाँ पानी के बिना तड़फती हैं। मनुष्य को आग की भट्टी में डाल देने से जैसे वह तड़फता है-बिलबिलाता है उसी प्रकार मछलियाँ भी बिना पानी तड़फ कर जान दे देती हैं। निर्दयता की सीमा यहां तक ही समाप्त नहीं हो जाती। उन मछलियों को इमली या बादाम की तरह फोड़ा जाता है तब कहीं किसी किसी मछली में से मोती निकलता है। इस प्रकार हजारों कोमल निर्दोष मछलियों के प्राण लूटे जाते हैं और बहुत कम मछलियों में मोती निकलते हैं। इसीलिये मोती मँहगे होते हैं। प्रत्येक मछली में से मोती निकलते तो वे इतने मँहगे न होते।

हजारों मछलियों की हत्या करने पर किसी किसी मछली में से ही मोती निकलने के कारण मोतियों का मूल्य अधिक है।

अब यह बात सहज ही समझी जा सकती है कि दो चार मोती हजारों मछलियों के ढेर के बराबर है। तब जिस हार में हजारों मोती पिरोये हों उस मोती के हार को कितने लाख मछलियों का पिंड समझना चाहिये? पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं ही गणित कर देखें।

मोती की मँहगाई मछलियों की अधिकाधिक मृत्यु-संख्या पर ही निर्भर है। मोती पहनने वाला तथा मोती पहनने वाले को अच्छा समझने वाला प्रकारान्तर से मछलियों को मारने की आज्ञा देकर परम पाप का हिस्सेदार बनता है।

जैसे लाखों फूलों के अर्क से अत्तर का एक बूंद बनता है, उसी प्रकार लाखों मछलियों का अर्क एक मोती है, मोतियों का एक हार बनाने के लिये इतनी मछलियां मारी जाती हैं कि उनके इस बड़े भारी ढेर में हार पहिनने वाला पूरा का पूरा ढंक सकता है। आह! साढ़े तीन मन के मनुष्य ढंक सकें उससे भी अधिक मछलियों के ढेर के अर्क के रूप में ही एक मोती का हार बन पाता है!

फूल का हार बेचने में पाप मानने वाला मोती का व्यापारी अपने व्यापार को पापमय न मान कर पवित्र माने, इससे बढ़ कर मिथ्या समझ और क्या हो सकती है?

कुत्ते को हड्डी प्यारी लगती है इस कारण वह अपने देव को भी हड्डी की ही भेंट चढ़ाता है। तथा मदिरा और मांस के प्रेमी अपने इष्ट देवी-देवता को *मदिरा और मांस* ही भेंट करते हैं। इसी प्रकार मोतियों के शौकीन अपने देव को भी मोतियों का हार भेंट कर उसे अपवित्र बनाते हैं और अपने को भाग्यशाली मानकर पाप के पाताली कूप में पड़ते और अधोगति के अधिकारी बनते हैं।

देवी-देवता को मांस-मदिरा चढ़ाने वाले जैसे दया के पात्र हैं उसी प्रकार वे लोग भी दया के पात्र हैं जो प्रभु को मोतियों

का हार पहनाते हैं। मांसाहारी अपने जीवन में दो-चार बार या भैंसों का देव के निमित्त बलिदान करता है परन्तु दयाधर्म अनुयायी होने का दावा करने वाले जैन या वैष्णव अपने पवि मन्दिर में विराजमान तीर्थंकर प्रभु, राम या कृष्ण के निमि मोती के हार के रूप में लाखों मछलियों का बलिदान करते और इस बलिदान में पुण्य मानकर धर्म से अधिकाधिक वि होते हैं।

खुद को मोती पहनने के लिए या अपने उपास्यदेव को मों का हार भेंट करने के लिए लाखों रुपये खर्च करने पड़ते हैं। खर्च के लिए उसे अपने व्यापार में सैकड़ों गरीबों को अ रूप से लूटने और निर्दयता-पूर्ण व्यवहार करने के लिए त होना पड़ता है।

इस प्रकार मोती के शौकीन लाखों मछलियों का संहार कराने के लिए हुक्म देते हैं और हजारों बेचारे मजदूरों को समुद्र में गोता लगवा कर मरण-शरण करते हैं। इसके अतिरिक्त मोती के हार के लिए लाखों गरीबों का पैसा लूट कर अपने अन्तःकरण को दया जैसे मानवीय गुण से रहित बनाते हैं—दयाधर्म की ज में कुठाराघात करते हैं।

पूज के हार में पाप मानने वाला सच्चा दयाधर्मी मोती हार का किसी भी प्रकार स्पर्श तक नहीं कर सकता। लाखों रुप का इनाम मिलने पर भी दयाधर्मी अपने हाथ से प्रत्यक्ष रूप चींटी की हिंसा नहीं कर सकता जब कि वही अपने देवी-देव को भेंट चढ़ाने के लिए या अपने विलास के लिए मोतियों हार काम में लाकर लाखों या करोड़ों मछलियों तथा अ मनुष्यों का संहार करता है।

पाठकों से नम्र निवेदन है कि आप मोती का मोह त्यागें में आपका और दूसरों का कल्याण है।

सोने में पाप ही क्या ?

राक्षसों के राजा रावण की राजधानी नगरी सोने की थी और उसमें राक्षसी भावना से भरपूर व्यक्तियों का वास था। उस सुवर्णमयी राक्षसी नगरी का रामचन्द्रजी ने नाश किया था।

सोने की नगरी लंका और उसमें बसने वाले लोग राक्षस कहलाते थे।

सोने की नगरी में बसने वाले मनुष्य के समान ही मनुष्य थे। केवल उनमें असंतोष वृत्ति और लालसा का प्रभाव होने के कारण वे राक्षस गिने गए थे।

मनुष्य के शरीर-निर्वाह के लिए अन्न और वस्त्र पर्याप्त है और प्रकृति नियमित रूप से उनकी पूर्ति करती रहती है। इसके-स के लिए मनुष्य को विशेष पापाचरण की आवश्यकता नहीं है। मगर शरीर के लिए अनावश्यक, विलासवर्द्धक आभूषणों एवं मौज-शौक के साधनों के लिए वर्तमानकाल में इतने उद्योग वेगवान् यंत्र बढ़ते जाते हैं। 'जहाँ वेग वहाँ उद्वेग' इस न्याय के अनुसार वेग के प्रसार से उद्वेग भी बढ़ता चला जाता है।

विज्ञान की नयी-नयी संहारक खोजें, लड़ाई-झगड़े और विषैली दवाइयों और यंत्रों का आविष्कार केवल एक राक्षसी वृत्ति सुवर्ण वृत्ति पर आश्रित है।

रेल के डिब्बे में हाथ पैर और पेट फुलाकर चार आदमियों की जगह रोकने वाला आदमी जैसे राक्षस के समान समझा जाता है उसी प्रकार खानपान, मकान, वस्त्र और आभूषणों में जो मनुष्य एक साधारण व्यक्ति से जितना ही अधिक खर्च करता है उतनी ही अधिक शोषण-वृत्ति, राक्षसीवृत्ति का उसे सेवन करना पड़ता है

श्रीफल जितना मांगलिक और शुभसूचक माना जाता है, सुवर्ण उतना ही अमांगलिक और अशुभसूचक माना जाता है। रात्रि में स्वप्न में सुवर्ण का दिखाई देना, प्रातःकाल उसका नाम आ जाना या रास्ते में पड़ा हुआ मिलना भी अमंगल या 'अशुभ' गिना जाता है। इतना होते हुए भी समाज सुवर्ण का मोह नहीं छोड़ सकता, यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है।

जैसे श्रीफल मांगलिक है उसी प्रकार उसकी चूड़ियां व कटोरियां भी मांगलिक हैं, जब कि सुवर्ण के आभूषण उतने अमांगलिक हैं।

सोने के लिए संसार में विविध प्रकार के पाप सेवन किये जाते हैं। इसलिए स्पार्टा के बादशाह लाइकरगस ने सोने को देश निकाला दे दिया था—सोने का विनाश कर दिया था। उसके राज्य में अपराधियों को बेड़ियां बनवाने के लिए ही सोना काम में लाया जाता था। हीरा, मोती तथा अन्य जवाहरात एवं मूल्यवान अलंकारन के [illegible] के काल में, [illegible] में [illegible]

ाने में उसे केवल पीड़ा पहुंचाने के लिए पहनाए जाते थे, पर आज हमारे श्रीमान् लोग अपनी सेठाई या बड़प्पन दिखाने के लिए इनका उपयोग करते हैं।

सुवर्ण-मोह समस्त पापों का पिता-जनक-है। सुवर्ण-मोह ाप का सागर है और दूसरे सब पाप नदियों के समान हैं, जो मा-आकर इसी समुद्र में मिल जाते हैं।

सोने की खानें सीधी लम्बी और गहरी होती हैं। उनमें काम करने वाले मजदूरों को शुद्ध हवा, नसीब नहीं होती। ये पैशाचिक खानें दस से लेकर बारह वर्ष तक मजदूरों के सत्व को चूसकर उसे हाड़ों का ढांचा मात्र बनाकर अन्त में श्मशान में भेज देती है।*

कसाईखाने में पशु-पक्षी मारे जाते हैं, उनका सत्व चूसा जाता है तब सोने की खानों में मनुष्यों का कत्ल होता है—वे कुचले जाते हैं, दब जाते हैं, उनका सत्व बुरी तरह चूस लिया जाता है।

मांसाहारी मांस न खावें तो कसाईखाने किस प्रकार चल सकते हैं? मांस-भक्षी लोग ही नये कसाईखाने खोलने की प्रेरणा करते हैं। इसी प्रकार सोने का उपयोग करने वाले सोने की

---

* सोने की खानों में १२ से १४ वर्ष के मजदूर-बालकों को नौकर रखा जाता है। वे पापी पेट के लिए नौकरी करते हैं। १०-१२ वर्ष में ही वे नवयुवक अंधेरी और हवाहीन खानों के संसर्ग से प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। जैसे हाथीदांत के लिए हाथी मारा जाता है उसी प्रकार सोने के लिए मनुष्यों को सड़ा-सड़ाकर मार डाला जाता है। सोने की खानें मनुष्यों के कत्लखाने हैं।

मिल के वस्त्र

४

जन्म के साथ ही मृत्यु लगी हुई है। जो जन्म लेता है वह अवश्य मरता है। पशुओं की मृत्यु के पीछे उनका चमड़ा उतार लिया जाता है और वह चमड़ा सुधरे ए देशों में बूट पाॅकेट आदि अनेक वस्तुएँ बनाने के काम में ता है

अफ्रीका जैसे जंगली प्रदेश में भी वहां के मनुष्य जंगली ने से वस्त्रों के बदले चमड़े का उपयोग करते हैं।

सभ्य देशों में प्राकृतिक मृत्यु प्राप्त किये हुए पशु का चमड़ा िनने अथवा ओढ़ने में पाप, असभ्यता तथा जंगलीपन माना ाता है। चमड़े के लिए पशुओं को मार नहीं सकते और जीवित ुओं को मार कर उनका चमड़ा-सींग अथवा शरीर का कोई ग किसी काम में लेना दयाधर्मी समाज के लिए अनुचित-सा ना है और यह ठीक भी है।

जिस बाजार या मोहल्ले में हिन्दुओं की बस्ती हो वहां यदि ई गाय अथवा बकरे का वध कर डाले तो सारे शहर में हड़ताल करदी जाती है हाहाकार मच जाता है। यहां तक

प्राय तो लाखों मजदूरों को मजदूरी मिल सकती है। इससे उन्हें जीवन-दान मिलेगा। मिल के वस्त्र काम में लाने वाले लोग लाखों मनुष्यों को निराधार बनाकर भूखों तड़फा-तड़फा कर इच्छा न होने पर भी उन्हें मरवाते हैं।

इसके उपरान्त मिल के तंतुओं को मजबूत बनाने के लिए चर्बी काम में लाई जाती है और उस चर्बी के लिए हजारों दूध देने वाले पशु मारे जाते हैं।

दुधारू जानवरों की कमी से दूध, दही और घी का अभाव होता है। पशुओं के बिना खेती भी नहीं हो सकती, अतः अन्न मँहगा होता है, इस मँहगाई के शिकार गरीब लोग होते हैं।

रेशम पहनने वाले दयाधर्मी को पता भी न होगा कि एक गज रेशम के लिए लगभग चालीस हजार कीड़ों को उबलते हुए पानी में डालकर मारा जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि अहिंसा के उपासकों को अपनी मौज-शौक और खानपान की सामग्री के सम्बन्ध में कितनी बातें जाननी चाहिए।

मिलों में काम करने वाले मजूरों के मुख और श्वास द्वारा संचे की लोहमय—वज्रमय रज शरीर में जाकर उनके फेफड़ों को सड़ा डालती है और लाखों मजूरों का अल्प समय में ही अन्त कर देती है।

मिलों में स्त्री-पुरुष अत्यंत निकट परिचय में आते हैं इससे उनके नैतिक जीवन का प्रायः घोर पतन हो जाता है।

जब लोग हाथ से कातते और बुनते थे तब वे पशुओं का पालन करते थे। उन्हें स्वयं ताज़ा दूध, दही और घी खाने को मिलता था और समाज को भी वे घी-दूध दे सकते थे। अब मिल के मजदूर प्रायः बकरे पालते और उनका भक्षण करते हैं। वे

घी-दूध के बदले शराब, चाय और तमाखू का सेवन करते हैं और शराब के नशे में चूर होकर स्वयं पतित होते और साथ ही दूसरों का भी पतन करते हैं।

अफ्रीका के जंगली हब्शी अपने यहां के मारे हुए जानवर का चमड़ा पहन-ओढ़कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अतएव वे मिलों के चर्बी वाले एवं रेशमी वस्त्रों के पाप से बचे रहते हैं। अतएव वह मिल-मालिकों को, रेशम के कीड़ों की हत्या करने वाले व्यापारियों को, ऐसे कपड़े बेचनेवाले दूकानदारों को तथा मिल के राक्षसी यंत्र बनाने वालों को उत्तेजना नहीं देते। फलतः वे महाआरंभी नारकीय पाप से बचे रहते हैं। इसके अतिरिक्त मृत पशु का चमड़ा ओढ़ने वाले जंगली अफ्रिकन अपने शरीर की रक्षा तथा लज्जा-निवारण के लिए सादगी के साथ, उदासीन भाव से चमड़े का उपयोग करते हैं। तब चर्बी से चमकने वाले और रेशम के कारण [illegible] वस्त्र पहनने वाले लोग, शुद्ध सादी खादी के [illegible] कर अपने विलास मौज- [illegible] को [illegible] ऐसे पापमय वस्त्रों का [illegible] ज्यादा पाप उपार्जन करते हैं।

[illegible] ने उसे प्रेम से [illegible] जनक थे। वह राक्षसों [illegible] में रामचन्द्रजी जैसे [illegible] पड़ा। तब आप जैसे [illegible] उनकी संदुकनी का [illegible] कोठरियों में भरते हैं [illegible] मिलता। फिर उनके [illegible] रखते हैं। उनकी

अविश्रान्त रूप से रात दिन घनघोर मज़दूरी करनी पड़ती है जिसके बदले में उन्हें भर पेट भोजन तथा पहिनने को पूरे वस्त्र भी नहीं मिलते, जिससे वे हमेशा कर्ज़दार ही बनते जाते हैं।

उनका सत्व यंत्रों द्वारा चूसा जाता है और उनकी—हज़ारों लाखों मज़दूरों की मज़दूरी आप जैसा एक श्रीमान् हड़प जाता है। उन हज़ारों मज़दूरों के खून का पसीना बना कर की हुई मज़दूरी को आप अपनी 'पुण्याई' मानते और बाग-बगीचा, बंगला तथा मोटरों में मौज करते हैं, विविध प्रकार के भोगविलास में उसे बरबाद करते हैं। ऐसी दशा में आप जैसों को दस मस्तक का रावण नहीं पर हज़ारों मस्तक का रावण नहीं मानना चाहिये।

प्रातः काल रावण का मुख नहीं देखा जाता, उसका नाम तक नहीं लिया जाता। उससे मित्रता नहीं की जाती, यहां तक कि उसके पड़ौस में भी नहीं रहा जाता। उसके घर का अन्न-पानी तक नहीं लिया जाता। फिर तुम्हारे साथ मुझे कैसा सम्बन्ध रखना चाहिए?

मिलमालिक ने कहा-तो कहो, आखिर करना क्या चाहिये?

उसके स्नेही ने उत्तर दिया—मिल मज़दूरों को अपना पुत्र भाई और मित्र समझो। वैसा ही उनका सम्मान करो। उनके लिए पर्याप्त सुविधाएँ कर दो और मिल के कपड़ों पर कम से कम नफा लेकर जनता को सस्ते कपड़े दो। तुम अपने निजी खर्च के लिए कम्पनी में कमती रुपये लो और बाकी बची हुई रकम मज़दूरों के जीवन-सुधार में लगाओ। ऐसा करने से ही तुम अपने नैतिक कर्त्तव्य का पालन कर सकोगे।

मिलों ने खेती के लायक-उपजाऊ ज़मीन मीलों घेर रखी है और किसानों को ललचाकर-उनसे खेती का काम छुड़ाकर अपने यहां नौकर रख लिया है। इससे भी देश की धान्य एवं पशु-पालन रूप संपत्ति मटियामेट होगई है। मिल के यंत्र बनाने वाले प्रायः मांसाहारी होते हैं अतएव मिल के कपड़े काम में लाने वाले लोग अपना पैसा मांस खरीदने के लिए मांसाहारी को देते हैं। विदेशों में मिल के यंत्र बनाने के लिए बड़े राक्षसी कारखाने खुले हुए हैं। यहां लाखों-करोड़ों मन लोहे और शीशे का रस उबाला जाता है और उससे यंत्र तैयार किए जाते हैं। पाठक इसीसे यंत्रों की विशालता की कल्पना कर सकते हैं। उन भारी-भरकम भयंकर यंत्रों को भारत में लाने के लिए लाखों के खर्च से बड़े-बड़े जहाज अनेक समुद्री जलचर जीवों को एवं छोटी-बड़ी मछलियों तथा अन्य प्राणियों को तीक्ष्ण तलवार के समान शस्त्र से काटते हुए वेग के साथ यहां आते हैं। इसके अतिरिक्त लोहे तथा कोयले की खानों में अनेक मनुष्य तरह-तरह की आकस्मिक दुर्घटनाओं से अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। इस प्रकार मिल के तथा रेशम के वस्त्रों का व्यवहार करने वालों के लिए अनेक तरह से पाप का विचार किया जा सकता है।

मिल और रेशम के वस्त्रों में जितना पाप है, हाथ से बने हुए वस्त्रों में उतना ही पुण्य है। मिल के कपड़े में से चौदह आना विदेशी बनियों के हाथ में जाता है, जब कि खादी खरीदने में खर्च किये गये एक रुपये में से पूरा का पूरा भारतवर्ष के अनाथ भूखों मरने वाले और त्यागी की तरह सादा जीवन बिताने वाले भाई बहिनों की मुट्ठी में जाता है और उनके हृदय का आशीष मिलता है सो अलग ही। खादी का तिरस्कार करना ? अपने अन्न

पशुओं का शिकार करना है और अनिच्छा से भी उन्हें श्मशान में पहुँचाने के पाप का भागीदार बनाना है।

उपर्युक्त पापों का खयाल करते हुए यह निर्विवाद है कि मिल के बने हुए और रेशमी वस्त्र पहनने ओढ़ने वाली भारत की सभ्य (!) जनता की अपेक्षा चमड़े का व्यवहार करने वाली आफ्रिका की जंगली या असभ्य (!) प्रजा किसी भी प्रकार अधिक पापमय जीवन नहीं बिताती। इतने पर भी यदि हम उन आफ्रिकावासियों को जंगली असभ्य और पापी कहेंगे तो शृङ्गार और भोग विलास के लिए ही मिल और रेशम के वस्त्रों का व्यवहार करने वालों के लिए हिन्दी साहित्य-कारों को अपने शब्द कोष में कुछ ऐसे शब्दों की वृद्धि करनी पड़ेगी जो उनके पापों को भली भांति प्रगट कर सकें।

एक ओर वे हिंसक पशु हैं जो दूसरा उपाय न होने पर अपनी भूख मिटाने के लिए जीव हिंसा करते हैं और दूसरी ओर वे विलासी मनुष्य जो केवल आमोद प्रमोद और कषायपोषण के हेतु चर्बी और रेशम के पापमय वस्त्र पहनते हैं। इन दोनों में किसके पाप का पलड़ा भारी है? पाठकगण गंभीरता से विचार करें।

रेल-गाड़ी

६

इस जमाने के लोग हरेक विषय में ऊपरी नजर से विचार करते हैं। इसलिए वे वस्तु की गहराई को उसके शुद्ध स्वरूप को ठीक ठीक समझ भी नहीं सकते। नतीजा यह होता है कि ये जाते हैं पुण्य का उपार्जन करने पर बनते हैं पाप के भागी। चौबेजी छब्बे बनने जाते हैं पर दुबे ही रह जाते हैं।

बैलगाड़ी में दो बैल चलते हैं। गाड़ी चलती है। अत. बैलों और गाड़ी के पहियों के नीचे आकर कई एक छोटे बड़े कीड़े मकोड़े कुचल जाते हैं। बैल गाड़ी धीमी चलती है इसलिए खर्च भी इसमें ज्यादा होता है। इसलिए आजकल बैलगाड़ी का परित्याग कर लोग रेलगाड़ी और मोटर का उपयोग करने लगे हैं। उन्हें रेल या मोटर में पाप भी कम सूझता है मगर अच्छी तरह विचार करने से मालूम होगा कि लाखों बैलगाड़ियों के चलने से जो पाप होता है उससे कहीं अधिक पाप एक रेलगाड़ी के चलने से होता है।

रेल के सपाटे में प्रतिवर्ष अनेकों आदमी और गाय-भैंस जैसे बड़े बड़े प्राणी कट मरते हैं। कभी कभी जब दो रेलें आमने-

ामने आड़ जाती है या और कोई दुर्घटना होती है तो हजारों ुष्य जलकर, कुचलकर या नदी में डूबकर मौत के मुँह में चले ाते हैं। जिस गाड़ी के अंधाधुंध वेग में गाय, भैंस जैसे बड़े-बड़े ानवर तक कट मरते हैं। उसके वेग में छोटे छोटे जीवजन्तुओं ी हिंसा की बात ही क्या है ?

रेलगाड़ी और मोटर के प्रचार की बदौलत बैलगाड़ी वाले चारे भूखों मरते हैं और उनके बैल कसाई के हाथों बिकते हैं ड़े-बड़े शहरों में फौज के लिए सदा तन्दुरस्त और जवान बै ाटे जाते हैं। इस पशु-धन का संहार होने से खेतीबाड़ी का भी त्यानाश होरहा है और भारत में दुःख तथा दरिद्रता की वृद्धि ोती जारही है।

रेल तथा मोटर में खर्च होने वाला पैसा देश से विदा होक श की दरिद्रता बढ़ाता है और बैलगाड़ी की यात्रा में खर्च हो ाली पाई पाई गरीब मनुष्यों को तथा बैल जैसे मूक प्राणियों ो जीवन दान देकर उनसे आशीर्वाद दिलाती है। इसके अति ेल रेलगाड़ी के लिए हजारों मील उपजाऊ जमीन रोकनी पड़ी मसे खेती को कई प्रकार की हानियाँ हुई हैं।

यह रेल है या पानी की प्रचण्डकारी रेलम्पेल है ? और, य ोटर-गाड़ी है या मौत-गाड़ी है ? इस बात पर विचार करन ावश्यक है। कभी कभी पानी की 'रेल' (बाढ़) आती है-त ्षण भर में कोलाहल मच जाता है और जो वृक्ष या मकान उस ापाटे में आते हैं उन्हें वह अपने साथ ही बहा ले जाती है ैकड़ों मनुष्य बेघर-द्वार निराधार बन जाते हैं और हजारों प ाण गँवा बैठते हैं। पर यह विश्वव्यापी कलमुँही रेल हमेश

न रात अखण्ड-अविश्रान्त वेग से बढ़ कर भारत की धन उप स्पत्ति को खींचे लिए जाती है और यही हाल मोटर या मो ड़ी का भी है।

रेल और मोटर आने से पहिले हमारा देश धन जन आदि म्पत्तियों से भरपूर था और इनके आने पर-इनकी बदौला श का वैभव मिट्टी में मिल गया है।

कहीं कहीं जैन मंदिरों में भगवान के सामने घी की बोली ली जाते हैं। उस समय भक्त लोग सवा रुपये मन घी का साव लगाते हैं। क्या वे जैन भगवान् के सामने मूल्य बोल कर सकी दिल्लगी उड़ाते हैं? कदापि नहीं। वास्तविक बात यह है के इस रेल की 'रेल' आने से पहले हमारे यहाँ घी का भाव वा रुपये सेर था और यही भाव आजकल मन्दिरों में बोला ाता है। जब घी सवा रुपये मन था तब दूध दही अनाज कितना सस्ता होगा उस समय! पाठक इस विषय में स्वयं ही वेचार कर देखें। रात्रिमी रेल के आने से पहले जिस भाव घी मिलता था आज उस भाव दूध भी नहीं मिल सकता, जिस भाव शक्कर मिलती थी उस भाव नमक भी नहीं मिलता, जिस भाव गुड़ मिलता था उस भाव नमक तक नहीं मिल सकता, और जिस भाव धान्य मिलता था उस भाव आज घास मिलना भी कठिन हो गया है। इतनी बड़ी मँहगी का कारण यही रेल है-इसी के प्रताप से सारी सम्पत्ति का अपहरण हो रहा है।

पहले एक आदमी पाँच आने में महीने भर दाल, रोटी, भात और शाक खाता था। हमेशा हलुवा-पूड़ी खाने वाले को ग्यारह आना मासिक खर्च होता था; जब आजकल एक आदमी क

ही यह वास्तविकता पाठकों के सामने उपस्थित की गई है। [illegible] यदि कोई पुण्य पुरुष आगगाड़ी और मोटर को पाप की [illegible] सुन्दरता समझने की भूल त्याग कर सांप की तरह दुखदाई [illegible] कर अपनी शक्ति के अनुसार उसके त्याग की भावना [illegible] तो भी बस है।

पाठकों को शांति के साथ विचारना चाहिये कि रेलों के बदौलत भारत की दौलत दुमची झाड़ कर चली गई है-विभूतिमय भारत आज भभूतमय (खाकमय) बन गया है और यदि धीरे धीरे वायुयानों का प्रचार होगया तो आह! उस समय बेचारे गरीब भारत की क्या दशा होगी? अतएव यदि भारत को पूर्ववत् समृद्धिशाली बनाना है तो पूर्व के साधनों को ही अपनाना चाहिये और इन आधुनिक अनार्य साधनों से गला छुड़ाना चाहिये।

ही चली जाती है। यूरोप में अन्धापे के दुःखों को मुआने के लिए अनेकों यत्न किये जा रहे हैं।

रात्रि के समय जङ्गल आदि में जाने के लिए जीव-जन्तु की रक्षा के लिए या अन्य आवश्यक अवसर पर भारतवर्ष में दीपकों का व्यवहार होता था, जो विशेष हानि-जनक न थे। उन अल्प प्रकाश वाले दीपकों में पतंग आदि जन्तुओं की भी बहुत कम हिंसा होती थी।

अब इस जमाने में घासलेट, गैस और झिलमिल-झिलमिल करने वाले बिजली के दिये बढ़ते जारहे हैं और इन दीपकों के कारण हमेशा हजारों-लाखों की संख्या में पतंग आदि जीवों का संहार हो रहा है।

अन्ध-श्रद्धालु धर्मात्मा लोग प्रभु को राजी करने के लिए अपने एक एक पवित्र मंदिर में बिजली की सैकड़ों बत्तियाँ जला कर नित्य लाखों निर्दोष पतङ्गों का बलिदान करते हैं। इस हत्या में प्रभु के चरणों पर जीवदया-प्रतिपालक जैनाचार्य क्यों मौन साधे बैठे हैं, यह समझ में नहीं आता। और संघ की यात्रा के समय स्वयं सम्मिलित होते हुए भी गाँव-गाँव नयी रोशनी कर दिया जलाने वाले भक्तों को वे क्यों नहीं सम्यग्ज्ञान देते, यह एक आश्चर्य है।

गरगड़ी का दिया जलाने के लिए एक ही दियासलाई सुलगानी पड़ती है। पर बिजली की बत्तियों के लिए विशाल मैदान में लाखों के खर्च से यंत्र लाये जाते हैं और उनसे बिजली उत्पन्न की जाती है। कपड़े के मिल की अपेक्षा बिजली उत्पन्न करने का बिजली-घर (Power House) अत्यन्त भयंकर है।

वेश्याएँ और वेश्यागामी पुरुष, कमाई और मांसाहारी पुरुष
ाप और शराबी, अफीम बेचने वाला और अफीमची, रेशम
ी दांत और चर्बी वाले वस्त्र बेचने वाले और पहनने वाले—
ों ही जैसे अपराधी हैं उसी प्रकार गहने पहनने वाले और
ने वाले दोनों ही अपराधी हैं।

वेश्या शृङ्गार करके और हावभाव दिखाकर निर्दोष मनुष्य को
ने जाल में फाँसती है। इसी प्रकार सोने-चाँदी और जवाह
े आभूषण पहनने वाले भी आपही अपना शरीर सजाकर
नों को अपना सरीखा बनने को ललचाते हैं। अन्त में आज
ः अपठित लोग उनके शृङ्गार से मोहित होकर, उन्हीं के समान
आभूषणधारी श्रीमान् बनने के लिए रात या दिन में चोरी या
ार का धन्धा अख्तियार करते हैं। नतीजा यह होता है कि
ों को ही दुःख भुगतना पड़ता है।

आभूषणों की बदौलत स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक
 भरना पड़ता है। पुरुष तो लुटकर ही बच जाते हैं पर स्त्रियों
ंगार से चोर कामान्ध बनकर उनके शील का भी नाश करते
र आभूषण भी लूट लेते हैं। यदि वह स्त्री विधवा हुई तो
ज के भय से उसे गर्भपात करने के लिए बाध्य होना
ा है।

सदाचार-प्रचारक स्त्री-पुरुष पाठकों से निवेदन है कि वे यदि
के सब त्याग नहीं कर सकते तो अपना निजी जीवन तो अवश्य
ाहनों से स्वाधीन करें और आभूषणों का मोह त्याग दें। वे
णों का मोह जितना ही त्यागेंगे उतनी ही मात्रा में सदा-
ी वृद्धि होगी। अन्त में 'बिन्दु से सिन्धु' न्याय के अनुसार
ाचारी सुधार हो सकेगा।

[illegible] तामस प्रकृति के कंदमूलों का खाना निषिद्ध है। इसके [illegible]ाय कंदमूल जमीन के भीतर होते हैं और उन्हें शुद्ध हवा [illegible]ा सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता, अतः वे अन्य वनस्पतियों [illegible] तरह लाभदायक भी नहीं होते। इस प्रकार जीवों की दृष्टि से [illegible]र्थात् धार्मिक दृष्टि से तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से कंदमूल का [illegible]तना त्याग हो सके उतना ही उत्तम है।

जो जैन तथा अन्य जीवदया-प्रेमी लोग कंदमूल और [illegible]न्य वनस्पतियों को धार्मिक पर्व-दिवसों में काम मे नहीं लाते [illegible]ी लोग कस्तूरी, अंबर तथा केशर को धार्मिक पर्व के दिनों [illegible] निःसंकोच होकर काम में लाते हैं। न केवल इतना ही वरन् [illegible]में से कई लोग बीमारी के समय कॉड-लीवर-ऑइल तथा [illegible]न्यान्य मांस एवं चर्बी मिश्रित दवाइयों का भी उपयोग करते [illegible] और ऐसा करते हुए उन्हें उतना भी पाप का डर नहीं लगता [illegible]तना वनस्पति खाते समय लगता है।

कस्तूरी के लिए कस्तूरी-वाले मृग मारे जाते हैं। अंबर के [illegible]ए मच्छ मारे जाते हैं। भारतवर्ष में, काश्मीर में कुछ तोला ही [illegible]शर होती है जब कि देवमंदिरों में प्रति वर्ष लाखों तोले केशर [illegible] उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य खान-पान में भी [illegible]शर का उपयोग करते हैं। आमद कम और खर्च अधिक होने [illegible] देशावर में नकली केशर बनाकर भेजी जाती है और वही पवित्र केशर देव-मंदिरों में उपयोग की जाती है और वही खाने [illegible]े के काम में आती है।

कॉड नामक मछली के लीवर का तेल कॉड-लीवर-ऑयल [illegible]हलाता है। गाय और बैल का सत्व हेमोग्लोबीन है। ऐसी ऐसी

घृणित चीजों का उपयोग करने का परामर्श डाक्टर लोग दिया करते हैं और वनस्पति न खाने वाले अहिंसक (!) लोग इन चीजों को बेधड़क काम में लाते हैं।

वनस्पति खाने से एकेन्द्रिय वाले जीवों की हिंसा होती है जब कि केशर, कस्तूरी, अंबर, कॉड-लीवर-आयल और हेमोग्लोबीन के लिए पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या की जाती है। जीवदया-प्रेमी फल-फूल आदि वनस्पति का व्यापार करने में तो पाप समझते हैं और उल्लिखित पदार्थों का सदर्प व्यापार करने में सेठाई समझते हैं। यही लोग जीव-दया के लिए प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खर्चते हैं और यही इन पदार्थों का उपयोग करके पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या कराते हैं और हत्या करने वालों को उत्तेजन देते हैं। आश्चर्य तो यह है कि उनमें पाप को पाप समझने की प्रामाणिक बुद्धि भी नहीं है!

युरोप में कितने ही मांसाहार के विरोधी सज्जन हैं जो कस्तूरी अंबर, कॉड-लीवर-आयल तथा ऐसे ही अन्य पदार्थों का उपयोग नहीं करते, तब अपने को आर्य और दयाधर्मी मनवाने वाले तथा वनस्पति में पाप मानने वाले अहिंसाधर्मी किस प्रकार इन पदार्थों को काम में ला सकते हैं?

पद-पद पर हिंसा अहिंसा का विचार करने वाले जैन और जैनेतर अहिंसा-धर्मी लोग अपने विवेक को क्यों आगे नहीं बढ़ाते यह दुःख की बात है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसे मनन पूर्वक पढ़ने से यह बात भलीभांति जानी जा सकेगी कि वास्तव में हिंसा क्या चीज है और यह किस प्रकार होती है? पर अहिंसा के उपासकों को क्या इतनी फुरसत मिल सकेगी?

गुड़ और खांड

१०

तमाम वस्तुओं में पाँचों प्रकार के रस विद्यमान हैं फिर भी जीभ की लोलुपता के कारण अनेक प्रकार के रस ईजाद किये गये हैं।

हाथ से पीसे हुए गेहूँ की रोटी में और बिस्कुट में जितना अन्तर है उससे भी कहीं अधिक अन्तर गुड़ और खांड़ में है।

गन्ने का रस एक जगह से दूसरी जगह भेजना सुविधा-जनक नहीं है इस कारण गुड़ तैयार करने की आवश्यकता हुई। गन्ने का रस औटा कर गुड़ बनाया जाता है अतएव उसमें के पोषक तत्त्व कुछ अंशों में नष्ट होजाते हैं। लेकिन यह हानि क्षम्य मानी जा सकती है। मगर इस समय गुड़ के बदले यंत्रों से तैयार होने वाली खांड का चलन खोटे के नकली सिक्के की तरह बहुत अधिक बढ़ गया है। विलायत में गन्ने की फसल आवश्यकता से कम होती है इसलिये वहाँ के व्यापारी अनेक प्रकार के कन्दों में से भी खांड तैयार करते हैं, इस प्रकार तैयार होने वाली खांड में गुड़ के बराबर पोषक तत्त्व तो है ही नहीं साथ ही उसे तैयार करने में बड़ी-बड़ी भारी मशीनें काम में लाई जाती हैं। वह किस प्रकार तैयार होती है, इस बात को प्रगट करते हुए एक सज्जन ने बताया था कि खांड तैयार होते समय बहुत मैली होती है। पर जैसे हम लोग

चासनी बनाते समय, खांड के उबलते हुए रस में दूध डालकर उसका मैल निकाल लेते हैं उसी प्रकार उन्हें भी खांड साफ़ और सफेद करनी पड़ती है। परन्तु यदि ढेरों खांड दूध से साफ़ की जाय तो वह पोसा नहीं सकती। इसके सिवाय इतना दूध इकट्ठा करना भी सरल काम नहीं है। अतएव वे लोग दूध के बदले हड्डियों की भुकी काम में लाते हैं क्योंकि हड्डी रंग को नष्ट कर देती है। अतएव अहिंसा को जीवन का प्राण मानने वाले भाई-बहिन यदि ऐसी अपवित्र खांड के बदले गुड़ का उपयोग करें तो बड़ा श्रेयस्कर होगा।

गुड़ अपने गांवों में एकदम सीधी-सादी तरह तैयार होता है। उसमें पौष्टिक तत्त्व भी बहुत अधिक होता है। अतः इन मशीनों से बनने वाली खांड की अपेक्षा गुड़ खाना अधिक अच्छा है आशा है पाठक इस सम्बन्ध में स्वयं विचार कर हित को ग्रहण करेंगे

इससे स्पष्ट है कि तमाखू महान् हानिकारक वस्तु है। इसी कारण जहाँगीर आदि मुगल बादशाहों के राज्य में तमाखू पीने वाले के] ओठ, खाने वाले की जीभ और सूंघने वाले की नाक काट ली जाती थी और बार-बार इस अपराध को करने वाले के लिए और भी सख्त दण्ड था। काला मुँह करके गधे पर चढ़ा कर उसे फाँसी के तख्ते पर लटका दिया जाता था। आज तमाखू खाना, सूंघना और पीना सभ्यता का चिह्न समझा जाता है!

तमाखू बोने के लिए बढ़िया से बढ़िया जमीन पसन्द करनी पड़ती है। उस जमीन में प्रतिवर्ष लाखों मन तमाखू बोयी जाती है। अतएव जमीन में गेहूँ, बाजरी, मूंग, मक्की, चावल आदि जीवनोपयोगी पदार्थों की खेती नहीं हो सकती और इस कारण धान्य मँहगा होता है। घास के अभाव से पशुओं को मौत के पल्ले पड़ना पड़ता है, यह भी तमाखू की कृपा है। पशुओं की इस क्षति के कारण दूध, दही और घी जनता को पर्याप्त नहीं मिल पाता। भारतवर्ष में दूध के अभाव के कारण न जाने कितने से व्याकुल होकर अकाल में ही काल के गाल में चले

तमाखू का सेवन करने वाला खांसी, दमा, फेंफड़ा सम्बन्धी अनेक छूत की बीमारियों का शिकार है। उसका श्वास, उसका थूक आदि रोग का घर बन जहाँ जाता है वहीं अपने शरीर के जहरीले परमाणु छोड़ और सर्वसाधारण के स्वास्थ्य को भारी हानि पहुँचाता

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तमाखू उगाने सी और बढ़िया उपजाऊ जमीन रोकनी पड़ती है। में धान्य नहीं उपजाया जा सकता। परिणाम यह

हथिनी के समान मस्त गायों भैंसों को भी कसाई के हाथों सं दिया जाता है।

जब ऐसे जानवर कटने के लिए कसाईखाने जाते हैं तब कस के बालक उनका दूध पीते हैं और उसी समय नंग-धड़ंगा मान दानव अपने हाथ में तलवार से भी अधिक तेज धार वाला छु लाकर उनकी गर्दन पर अपने कठोर हाथ आजमाता है। निरप राध और माता के समान उपकारी पशुओं पर अपनी पिशाच वृत्ति को चरितार्थ करता है। कृतघ्न नरपिशाचों के इन दारुण दुष्कर्मों का लम्बा वर्णन करके पाठकों के सामने बीभत्सता क मूर्ति खड़ी करने से उनके कोमल हृदय को भारी ठेस पहुंचान ठीक नहीं है। अतएव इस प्रकरण को यहीं समाप्त कर देते हैं।

इस प्रकार शहरों में प्रति दिन हजारों दुधारू जानवरों का कत्ल होता है और समय-समय पर उसके आंकड़े म्युनिसिपलिटी की ओर से प्रसिद्ध होते रहते हैं।

पाठक सहज ही समझ सकते हैं कि ऐसी अवस्था में शहरों में बाजारू दूध, दही और घी खाना कत्ल को उत्तेजना देना है। यह बात हथेली की भांति स्पष्ट है फिर भी दयाधर्मी—गोप्रतिपालक—जरा भी विचार नहीं करते और जैसे मांसाहारी लोग पशुओं को कटाते हैं उसी प्रकार बाजारू दूध-दही और घी खाने वाले धर्मात्मा लोग परोक्ष रूप से कत्ल को उत्तेजना दे रहे हैं।

यदि बाजारू दूध-दही-घी खाने वाले लोग अपने घर पशुओं का पालन करने लगें तो पशु कसाई के पल्ले पड़ने से बच सकते हैं। इसके अतिरिक्त दुधारू जानवर, जो आज मांस के भाव सस्ते बिक रहे हैं, सस्ते नहीं बिकेंगे। जानवर सस्ते नहीं बिकेंगे तो मांस भी सस्ता नहीं मिलेगा और फल यह होगा कि मांस का उपयोग

घृत कम हो जायगा। इस प्रकार कसाई और मांस खाने वाले
दोनों ही इस भयंकर पाप से बहुत कुछ बच सकेंगे और साथ ही
भारतवर्ष के प्राचीन गौरव-पशुधन-की भी रक्षा हो सकेगी।

अफगानिस्तान, तुर्किस्तान तथा जर्मनी जैसे देशों में दुधारू
जानवरों को मांसाहार के लिए काम में लाने की सख्त मनाई है।
इस सम्बन्ध में वहां की सरकारों ने अनेक कानून बना दिये हैं।
जर्मनी के सर्वेसर्वा डिक्टेटर हिटलर ने तो डाक्टरी का अभ्यास
करने वाले विद्यार्थियों के लिए भी यह कानून बना दिया है कि
कोई भी विद्यार्थी डाक्टरी प्रयोग के लिए दूध देने वाले जानवर
को नहीं मार सकता। उसने सिनेमा द्वारा प्राणियों के शरीरशास्त्र
की शिक्षा देने का प्रबंध किया है।

भारतवर्ष में दिनोंदिन पशुधन का ह्रास हो रहा है। भारत
में ३६ करोड़ की आबादी है पर दूध देने वाले पशु आठवें भाग
भी नहीं हैं। अतएव दूध दही और घी केवल श्रीमानों की खुराक
बन गये हैं। और श्रीमानों को भी बनावटी घी और सत्वहीन दूध
का उपयोग करना पड़ता है।

जिस देश में कभी दूध दही और घी की नदियां बहती थीं
उसी देश में निखालिस दूध और घी मिलना तक मुश्किल हो गया
है! मुगल बादशाहों के जमाने में सवा रुपया सेर घी बिकता था।
दूध और दही कितना सस्ता होगा, इस का अनुमान इस से सहज
ही लगाया जा सकता है। आज तो निस्सत्व दूध का मठा बाजारों
में घी से भी मँहगा बिकने की नौबत आन पहुंची है। वह भी
यदि पर्याप्त परिमाण में मिलता तो भी गनीमत थी पर दुर्भाग्य
भी तो नहीं है।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, प्राचीन काल में भारत में दूध दही और घी की नदियाँ बहती थीं। यही कारण है कि उस समय प्रतिवर्ष लाखों मन घी यज्ञ में स्वाहा कर दिया जाता था फिर भी खाने-पीने में किसी को कुछ भी कमी नहीं होती थी।

लोगों को शायद ही मालूम होगा कि दुधारू जानवरों का पालन करने वाले अधिक दूध के लालच में जानवरों को अभक्ष्य वस्तुएँ भी खिलाते हैं।

बाजारू दूध दही और घी का उपयोग करने वाले पाप से बचने के बदले पाप के अधिक गहरे समुद्र में गिरते हैं। दुधारू पशुओं का पालन करने में शुद्ध दूध घी मिल सकता है और उन जीवों को भी अभय दान मिल सकता है। करोड़ों रुपया गोशालाओं में खर्चने वाला दयालु भी विवेक के बिना (बाजारू घी दूध दही खाकर) दूध देने वाले जानवरों के कत्ल का कारण बनता है।

इसके अतिरिक्त बाजारू दूध स्वास्थ्य के लिए भी अत्यन्त हानिकारक होता है। बाजार का दूध अनेक प्रकार की बीमारियों का घर है। गायों और भैंसों को जो रोग होता है वही रोग उसका दूध पीने वालों को भी लागू पड़ जाता है।

इससे स्पष्ट है कि बाजारू दूध आदि को काम में लाने वाले व्यक्ति अपने स्वास्थ्य को धर्म को, और धन को नष्ट करते हैं। दया-धर्मी के लिए जैसे मांस-मदिरा अभक्ष्य है उसी प्रकार बाजारू दूध दही घी और मिठाई आदि भी अभक्ष्य हैं।

आशा है पाठक बाजारू दूध और उससे बनने वाली अन्य चीजों को त्याग कर विवेक का परिचय देंगे।

इसलिये चाहे न हों इतनी दूर जाकर इन क्रियाओं को करने के लिए स्थान भी मौजूद हैं। फिर भी अपने हाथों और पैरों का दुरुपयोग करके अपने मकान के आस पास पाखाने में ही शौचादि क्रियायें करके, गन्दगी फैलाकर, अपने और दूसरों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाकर मनुष्य अपने आपको बड़ा समझता है। और जिस प्रकार माता-पिता अपनी सन्तान का मल मूत्र साफ करते हैं उसी प्रकार निःस्वार्थ भाव से सारे समाज के मल को साफ करने वाले महान् सेवकों को नीच, कमीन या अछूत समझा जाता है। भला इस अन्याय की भी कोई सीमा है? इस से बढ़ कर अत्याचार और क्या हो सकता है?

चमार आदि के धन्धों को समाज जितना ज्यादा नीच समझता है उन धन्धों में वास्तव में उतनी ही पवित्र और उत्तम भावना होती है। कुम्हार, दर्जी, मोची, चमार और नाई आदि की भावना अच्छी होती है। नाई तीक्ष्ण शस्त्र से केश काटता है। वह जब अपने उस्तरे को पेटी से बाहर निकालता है तब उसकी भावना यही होती है कि मेरे ग्राहक को कहीं कष्ट न हो, मेरा हाथ उसे कहीं भारी न मालूम हो। अवश्य वह एक धर्म के पालक के सिर पर भी गुलाब के फूल की नोंक की तरह उस्तरे की धार फेरता है। उनके धन्धे में असत्य, अन्याय, घृणा या प्रपंच लेशमात्र भी नहीं है। लेखक की सादर प्रार्थना है कि अपने आपको लक्ष्मी-पुत्र या साहूकार मानने वाले व्यक्ति अपने व्यापार तथा अपनी भावना के साथ महान् सेवकों तथा अन्य नीच गिने जाने वाले वर्ग के सेवकों की भावना के साथ जरा तुलना कर देखें।

भंगी को अछूत मानने वाला महान पाप का सेवन करता है। ऐसे परम सेवकों का अपमान सेवा का अपमान है। अपने

को ऊँचा समझने वाला अपने कर्तव्य से ऊँचा है या नहीं, इस बात पर विवेक के साथ विचार करेगा तो निःसंदेह वह सत्य वस्तु समझ सकेगा।

भंगियों के मुहल्ले के कुत्ते, बिल्ली या चूहे वणिक् या ब्राह्मण के घर में प्रवेश कर सकते हैं। भंगी द्वारा इकट्ठे किए हुए मल की टोकरी पर बैठी हुई मक्खियाँ ब्राह्मण के भोजन पर बैठ सकती हैं। इसके लिए स्पृश्य अस्पृश्य का कुछ भी विचार नहीं किया जाता। भंगियों के मुहल्ले की कुतिया वणिक् की गली में ब्यायेगी तो जीवदया-प्रतिपालक उसकी भलीभांति सौर-व्यवस्था करेंगे। श्रीमानों के बालक उसके पिल्लों के साथ खेलेंगे-कूदेंगे उन्हें चूमेंगे, गले से लगाएँगे। पर किसी दीन-हीन भंगिन की सौर-व्यवस्था करने में सहयोग देना भी श्रीमानों के लिए पातक होगा! क्या मानव जाति को हिन्व गिनकर भी उसके साथ इस प्रकार एक पशु से भी अधिक बुरा व्यवहार करना शोभा देता है! हिन्दुओं के लिए इससे बढ़ कर पाप की पराकाष्ठा और क्या हो सकती है? भंगियों के मुहल्ले की कुतिया या गाय के पैर में पाटा बाँधने में, ठंड से काँपती हुई को वस्त्र ओढ़ाने में पुण्य माना जाता... वह महान् सेवक भंगी मृत्यु शैया पर पड़ा हो तो उस... उसे औषधि देने में—पानी का बूँद उसके मुख में... हिन्दू समाज को पाप लगता है। इस से अधिक ... बर्बरता से परिपूर्ण कृत्य और क्या होगा?

ऐसे महान् सेवकों का अपमान करने से ... कोमल दिल दुखता है। वे अपने को ... समझ कर, इस दशा से ऊब जाते हैं और ... समाज की छत्र-छाया में चले जाते हैं। फिर

पात्र और राम एवं कृष्ण के पुजारी थे वही गोभक्षक और मुहम्मद एवं ईसा के भक्त बन जाते हैं।

इस प्रकार वेश-परिवर्तन होते ही वे तुम्हारे साथ बैठ सकते हैं, भोजन कर सकते हैं। यही नहीं बल्कि तुम्हें कभी-कभी उनकी जी-जी भी करनी पड़ती है। पर जब वे हिन्दू धर्म की छाया में होते हैं तब उन्हें कितना अपमान, कितना तिरस्कार कितनी बेइज्जती भोगनी पड़ती है ? धन्य हैं उन महान सेवकों को जो अपने पुरखाओं द्वारा आचरित सेवा धर्म को अनेक संकटों का सामना करते हुए भी अपनाये हुए हैं।

आज अस्पृश्यता सम्बन्धी जो विकट समस्या उत्पन्न हो गई है वह विवेक को सामने रखकर विचार करने से सहज ही सुलझ सकती है। पाठकों को चाहिए कि वे इस पुराने पापको शीघ्र ही धो डालने का प्रयास करें।

विक्रय या वध ?

प्रातःकाल पुण्यशाली मनुष्य का मुख देखा जाता है या उसके नाम का स्मरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त लोगों की यह भी धारणा है कि यदि प्रात काल पापी का मुँह नजर आ जाय या नाम का स्मरण हो जाय तो वह दिन बेकार जाता है—अमंगल होता है। जब पापी का मुख और नाम ही इतना भयंकर है तो पाप कितना भयंकर होना चाहिए ?

कसाई सब से बड़े पापी माने जाते हैं और उनमें भी गाय की हत्या करने वाला कसाई तो बड़े पापियों का सिरताज समझा जाता है। यह ठीक भी है क्योंकि गाय विश्व के लिए सब से अधिक उपकारी प्राणी होने के कारण उसकी रक्षा करना परमावश्यक है। ऐसा होने पर भी मनुष्य धन के लोभ से अनेक पापमय प्रवृत्तियाँ सेवन करते हैं। प्रायः सब पापों की जड़ धन का लोभ ही होता है। विश्व में दिनोंदिन बढ़ने वाला विज्ञान और उससे उत्पन्न होने वाले यंत्र धन के लोभ पर ही अवलंबित हैं।

पश्चिमी लोग वैज्ञानिक खोजें करके धन इकट्ठा करते हैं, पर भारत की कुछ अज्ञान प्रजा ने धन के मोह में—

ने एक नया तरीका ईजाद किया है। इस तरीके को खोजने में विद्यासागर एडीसन का दिमाग भी काम नहीं कर सका। यह है कन्याविक्रय !

भारतवर्ष में पुत्र की अपेक्षा कन्या का अधिक गौरव था। तभी से आज सीताराम, राधेश्याम, गौरीशंकर आदि नामों की प्रथा चली आती है। यहां पहले सीता, राधा और गौरी का नाम है, फिर राम, कृष्ण और शंकर का नम्बर आया है। जैन शास्त्रों के अनुसार भी भगवान् ऋषभदेव ने पहले अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दो बालिकाओं को ही भाषाज्ञान एवं गणित शास्त्र की शिक्षा दी थी।

इस समय भी जहाजों का यह नियम है कि यदि जहाज में आग लग जाय तो पहले कन्याओं को, फिर बालकों को, और बाद में स्त्रियों को बचाना चाहिए और अन्त में पुरुषों को बचाने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे सिद्ध है कि प्राचीन काल में कन्याओं की विशेष महत्ता थी। ऊपर लिखे हुए नियम में आज भी कन्याओं का गौरव सुरक्षित है।

किन्तु अपने को उच्च जाति का कहलाने वाले जैन और वैष्णव लोग भी कन्याविक्रय करते या कन्या के जीवन को कलंक रूप मानते हुए लेश मात्र भी लज्जित नहीं होते।

धन के लोभ से माता-पिता अपनी १०-१२ वर्ष की कन्या को उससे चार-पांच गुनी अधिक उम्र वाले-दादे के समान-पुरुष के साथ ब्याह देते हैं। ऐसा विवाह लड़की को ३०-४० वर्ष का वैधव्य प्रदान करता है।

कन्या पांच वर्ष बाद जब युवावस्था में आती है तब कन्या का वर—जो दादा के बराबर होता है-स्मशान-यात्रा के लिए सिधारता है। अन्त में उन ऐसी विभत्स पनवाने के सामाजिक नियम के कारण कौड़ी-मकौड़ी की दया पालने वाली कौमों में अन्य कौमों की अपेक्षा अधिक गर्भपात होते हैं। गर्भपात के भयंकर पातक के भागीदार कन्या को बेचने वाले माँ—बाप होते हैं। उनके सिवाय ऐसे विवाह में बराती बनने वाले, जीमने वाले, यहां तक कि उस विवाह--प्रसंग पर गुड़ का एक बीज मुँह में डालने वाले भी उस पाप के भागी होते हैं।

४५ वर्ष की स्त्री के साथ १०-१२ वर्ष के बालक को ब्याह दिया जाय तो वह बालक उसे मां, दादी या डाकिन समझकर भयभीत होकर भाग जायगा। जैसे ४५ वर्ष की स्त्री १०-१२ वर्ष के या २५ वर्ष के बालक को नहीं सोहती वैसे ही १५ या २५ वर्ष की कन्या के लिए असमान वय का पति भी नहीं सोहता।

कसाई को गाय बेचने वाला गो-हत्या करता है और पुत्री को बेचने वाला पुत्री हत्या एवं बालहत्या करके परम पाप उपार्जन करता है।

शराब या मांस का उपयोग करने वाले को या कसाई को जितना पापी समझा जाता है उससे भी अधिक पापी कन्याविक्रय करने वाले तथा उसमें भाग लेने वाले को मान कर इस भयंकर पाप से बचने के लिए विवेकशील मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिए।

करता। मगर अपनी सन्तान को कच्चे फल से भी तुच्छ समझ कर फल के बराबर भी उसके हित की चिंता नहीं की जाती।

भारतवर्ष में प्रति वर्ष ६० लाख बालकों की मृत्यु होती है उसका मुख्य कारण बालविवाह ही है।

युरोप आदि देशों में गाय, भैंस, घोड़ा तथा कुत्ता आदि पशुओं के नर और मादा की परीक्षा की जाती है और कौन-सा नर किस मादा के लिए विशेष योग्य है, इस बात की जाँच करने के पश्चात उनका संयोग कराया जाता है।

अफसोस है कि भारतवर्ष के माता-पिता अपनी सन्तान को पशुओं के बराबर भी परवाह नहीं करते। वे लग्न का लाहा लूटने में इतने मस्त हो जाते हैं कि बालककी अकाल-मृत्यु को आमंत्रण करते हैं। बाल विवाह करना मृत्यु के साथ विवाह करने के बराबर है। हमारी नम्र प्रार्थना है कि विवेकी पुरुष इस बात पर विचार करके अपनी संतान का अपने ही हाथों खून करना बन्द कर दें।

नफा होगा। इससे उस व्यापारी को आनन्द होगा। यदि सुभिक्ष हो, पशु खूब दूध दें और घी की पैदावार बढ़ जाय तो घी का भाव भी उतर जायगा और घी के व्यापारी को नुकसान होगा; इससे उसे दुःख होगा। वह सोचेगा-यह कैसा मनहूस साल आया है कि नफा तो दूर रहा उलटे पांच सौ रुपये गांठ से गये। अर्थ स्पष्ट है। सिर्फ पांच सौ रुपये के लिए उसे दुष्काल अच्छा लगता है। अपने तुच्छ स्वार्थ के आगे विश्व के अहित की उसे लेश मात्र भी चिंता नहीं है!

चमड़े के व्यापारी को तभी अधिक नफा होगा जब चमड़े की आमदनी कम होगी अर्थात् पशु कम मरेंगे। पशु उसी हालत में कम मरेंगे जब देश में सुभिक्ष होगा और सुभिक्ष से समस्त प्रजा सुखी होगी।

इस से पाठक समझ सकते हैं कि चमड़े के व्यापार को हम कितना ही नीचा क्यों न गिनें पर उसकी भावना का परिणाम तो सदा शुभ ही है।

इस कसौटी पर कस कर सब लोग अपने-अपने व्यापार की भावनाओं पर विचार कर देखें।

जैन समाज में एक विचित्र मान्यता ने घर कर लिया है। वह यह कि बस तमाम धन्धों में पाप ही पाप है। अतएव ब्याज का काम सब से उत्तम है। उस में कभी हाथ-पैर नहीं हिलाने पड़ते हैं। सीधा ब्याज आया और बस गुलछर्रे उड़ाए।

पर जरा इस बात की जांच तो कीजिए कि ब्याज-खाऊ व्यापारी की भावना कैसी होती है? वह दिन भर गद्दी पर मसनद

के मन में बैठा-बैठा विचार किया करता है कि कोई ब्याज लेने आवे। मनुष्य पर जब कोई आकस्मिक आपत्ति आ पड़ती है, कोई लेनदार नालिश करता है, दुर्भिक्ष पड़ जाता है या ऐसा ही कोई अन्य कारण होता है तब मनुष्य महाजन के पास ब्याज पर रुपये लेने आता है। अतएव प्रायः महाजन की यही भावना बनी रहती है कि किसी पर ऐसा दुःख आ पड़े। इसके सिवा दूसरी बात यह वह सोचता है कि अमुक आसामी रुपया नहीं चुकाता है, उस पर दावा दायर करूं, उसके बासन-भांडे अथवा घर या बाड़ा निकलवाऊं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी स्थिति में बेचारे गरीब की कैसी दुर्दशा होती है। उसको स्त्री और बाल-बच्चों को कैसी-कैसी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं। सम्भवतः इसी कारण मुस्लिम-धर्म में ब्याज लेने की सख्त मुमानियत की गई है।

इसके विपरीत किसान की क्या भावना होती है? खूब अच्छी वर्षा हो तो अच्छी फसल आवे जिस से जगत के सब जीव सुखी हों।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह प्रासंगिक कथन है। उन-उन धन्धों में अधिकतर ऐसी ही भावना होने की सम्भावना रहती है। अतएव यह भलीभांति समझा जा सकता है कि कोई भी धन्धा ऊंचा या नीचा नहीं है। जिससे मनुष्य की भावना पवित्र रहे और जगत् के जीवों के सुख और शान्ति की वृद्धि हो वह धन्धा पवित्र है और जिससे भावना कलुषित होती है वह अपवित्र है। ऐसा धन्धा करने वाला नीच गति ही पाता है।

नफा होगा। इसमें उस व्यापारी को आनन्द होगा। यदि सुभिक्ष हो, पशु खूब दूध दें और घी की पैदावार बढ़ जाय तो घी का भाव भी उतर जायगा और घी के व्यापारी को नुकसान होगा; इससे उसे दुःख होगा। वह सोचेगा-यह कैसा मनहूस साल आया है कि नफा तो दूर रहा उलटे पांच सौ रुपये गांठ से गये। अर्थ स्पष्ट है। सिर्फ पांच सौ रुपये के लिए उसे दुष्काल अच्छा लगता है। अपने तुच्छ स्वार्थ के आगे विश्व के अहित की उसे लेश मात्र भी चिंता नहीं है।

चमड़े के व्यापारी को तभी अधिक नफा होगा जब चमड़े की आमदनी कम होगी अर्थात् पशु कम मरेंगे। पशु उसी हालत में कम मरेंगे जब देश में सुभिक्ष होगा और सुभिक्ष से समस्त प्रजा सुखी होगी।

इस से पाठक समझ सकते हैं कि चमड़े के व्यापार को हम कितना ही नीचा क्यों न गिनें पर उसकी भावना का परिणाम तो सदा शुभ ही है।

इस कसौटी पर कस कर सब लोग अपने-अपने व्यापार की भावनाओं पर विचार कर देखें।

जैन समाज में एक विचित्र मान्यता ने घर कर लिया है। वह यह कि बस तमाम धन्धों में पाप ही पाप है। अतएव ब्याज का काम सब से उत्तम है। उस में कभी हाथ-पैर नहीं हिलाने पड़ते हैं। सीधा ब्याज आया और बस गुलछर्रे उड़ाए।

पर जरा इस बात की जांच तो कीजिए कि ब्याज-खाऊ व्यापारी की भावना कैसी होती है? वह दिन भर गद्दी पर मसनद

रद रे पैसा-पैसा विचार किया करता है कि कोई ब्याज लेने आवे।
न पर जब कोई आकस्मिक आपत्ति आ पड़ती है, कोई बीमार
[illegible] करता है, दुर्भिक्ष पड़ जाता है या दंगा हो कोई अन्य कारण
त है तब मनुष्य महाजन के पास ब्याज पर रुपये लेने जाता
अवसर प्रायः महाजन की यही भावना बनी रहती है कि किसी
ऐसा दुःख आ पड़े। इसके सिवा दूसरी बात यह यह सोचता
है पहली आसामी रुपया नहीं चुकाता है, उस पर नालिश दायर करूं,
के बासन-भांडे जब्त करूं या वारंट निकलवाऊं। यह कहने की
वश्यकता नहीं कि ऐसी स्थिति में बेचारे गरीब की कैसी दुर्दशा
ती है। उसकी स्त्री और बाल-बच्चों को कैसी-कैसी मुसीबतें
उठानी पड़ती हैं। सम्भवतः इसी कारण मुस्लिम-धर्म में ब्याज लेने
सख्त मुमानियत की गई है।

इसके विपरीत किसान की क्या भावना होती है? खूब अच्छी
वर्षा हो तो अच्छी फसल आवे जिस से जगत के सब जीव
सुखी हों।

ऊपर जो कुछ कहा गया है यह प्रासंगिक कथन है। उन-उन
धन्धों में अधिकतर ऐसी ही भावना होने की सम्भावना रहती है।
तएव यह भलीभांति समझा जा सकता है कि कोई भी धन्धा
ऊंचा या नीचा नहीं है। जिसमें मनुष्य की भावना पवित्र रहे
और जगत् के जीवों के सुख और शान्ति की वृद्धि हो वह धन्धा
पवित्र है और जिससे भावना कलुषित होती है वह अपवित्र है।
ऐसा धन्धा करने वाला नीच गति ही पाता है।